रामायणकालीन राजनीतिक स्थिति

डॉ. अमित सिंह[*]

शोधसार

रामायणकालीन भारत में राजनीतिक स्थिति मुख्यतः राजतंत्रीय व्यवस्था पर आधारित थी। यह एक संगठित और सुव्यवस्थित प्रणाली थी, जहाँ राजा सर्वोच्च सत्ता का केन्द्र होता था। समाज और राजनीति में धर्म का अत्यन्त गहरा प्रभाव था और राजधर्म को शासन की सफलता के लिए अनिवार्य माना जाता था। राजा को राज्य का स्वामी और संरक्षक माना जाता था। राजा का दायित्व मात्र प्रशासन तक सीमित नहीं था, बल्कि वह न्याय, धर्म और सामाजिक संरचना के संतुलन बनाए रखने में भी सक्रिय भूमिका निभाता था। यथा- अयोध्या के राजा दशरथ को एक आदर्श शासक के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिन्होंने धर्मपरायणता और न्याय का पालन करते हुए राज्य का संचालन किया। राजनीतिक व्यवस्था में धर्म और नैतिकता का विशेष महत्व था।

बीज शब्द: *रामायण, नैतिकता, राजनीतिक, वेद, राष्ट्र, राज्य, राजा।*

प्रस्तावना

वेदों के अनन्तर इस महान् देश की महती प्रज्ञा की सारस्वत धारा वाल्मीकि रामायण में अवतीर्ण है। यह दैवी संरचना जीवन को समग्रता में दिखाती हुई, प्रत्येक युग की प्राणसंचारिणी होती आयी है। वर्णनीय विषय की दृष्टि से इस महती संरचना में वह सभी कुछ है, जो जीवन को चरम शिखर तक पहुँचा देती है।

राजनीति से ही मानव जीवन आद्योपान्त संरक्षित एवं संचालित है। श्रीरामचन्द्र की राजनीति की दिव्य आभा से संसार का कण-कण आज भी आभामय है। इस कृति में अयोध्या, किष्किन्धा, लंका की राजनैतिक स्थितियों का जहाँ विशद आकलन हुआ है,

[*] सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया

वहीं मिथिला के राजा जनक, निषादराज गुह, पूर्व में राजा सगर, महाराज विश्वामित्र जो बाद में महर्षि बने उनकी सुदृढ़ और सर्वांगीण राजनीति का भी प्रसंगगत उल्लेख है।

उस समय की राजनीति राजा, मन्त्रिमण्डल, भूमि, दुर्ग, कोष, सेना और मित्रराज्य इन सात अंगों को प्रमुखता देती थी, जिसका सांकेतिक विवरण वेदों से ही प्राप्त होता है। वाल्मीकि ने तलावग्राहिनी लोकोत्तर प्रतिभा से जहाँ जीवन के सभी सन्दर्भों की विशद व्याख्या प्रस्तुत किया, वहीं राजनीतिक व्यवस्था पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है।

समाज और राज्य संस्था परस्पर अत्यन्त सम्बद्ध हैं। मनुष्य में जब सामूहिक रूप से निवास करने की प्रवृत्ति विकसित हुई और समाज को अपना रूप मिलने लगा तभी से शासन संस्था को विकसित करने की ओर मानव उन्मुख हुआ। प्राचीन मानव ने प्रथमतः जब राज्य संस्था का श्रीगणेश किया था, तब निश्चित ही जीवन का क्षेत्र अन्धकारपूर्ण परिस्थितियों से व्याप्त था।

प्राचीन भारतीय ग्रन्थ राज्य संस्था के निर्माण में दैवी शक्ति का आधार ग्रहण करते हैं। राजा या सम्राट ही राज्य संस्था के प्रतीक के रूप में माना जाता था। रामायण में राजा के प्रारम्भिक स्वरूप को दैवी शक्ति की सहायता के रूप में ही चित्रित किया गया है। उत्तरकाण्ड में कहा गया है कि सतयुग में कोई राजा नहीं था। देवताओं में शतक्रतु राजा था। मनुष्यों ने भी ब्रह्मा से देवताओं की ही तरह एक राजा प्रदान करने की प्रार्थना की, जिस पर वे आश्रित रह सकें और चिन्तामुक्त हो सकें। इस पर ब्रह्मा ने इन्द्र तथा समस्त लोकपालों की शक्ति का समावेश करते हुए, एक पुरुष की उत्पत्ति कर उसे राजा घोषित किया।

तं ब्रह्मा लोकपालानां समांशैः समयोजयत्।

रामायण में प्रयुक्त राष्ट्र, राज्य, जनपद, विषय आदि संज्ञाएँ राज्य संस्था के सीमाबद्ध स्वरूप को प्रकट करती हैं। इसमें जो राज्य संस्था वर्णित है, उसमें परम्परागत राजा की प्रधानता है। शासनसूत्र का संचालक राजा ही होता था। राज्यों की एक राजधानी होती थी जिसे 'पुर' कहा जाता था। राज्य में अन्य नगर भी होते थे। नगर के आस-पास अनेक ग्राम तथा घोष होते थे। सम्पूर्ण देश में एक ही राजा का राज्य होने का उल्लेख

रामायण में नहीं है, क्योंकि अयोध्या का राजदरबार अनेक अधीनस्थ राजाओं से सुशोभित था।

सामन्तराजसंघैश्च बलिकर्मभिरावृताम्।

किष्किन्धाकाण्ड में राम ने कहा है कि पर्वतों और जंगलों से युक्त सारी पृथ्वी इक्ष्वाकु राजाओं के राज्य में सम्मिलित है, किन्तु उनका यह कथन अपना अतिशय प्रभाव दिखाने के लिए ही है क्योंकि, वन गमन के समय उन्होंने अपने राज्य की सीमा को रथ में बैठकर एक दिन में ही पार कर लिया था। उस समय कैकय तथा विदेह राज्य अयोध्या के उत्तर पश्चिम तथा पूर्व की ओर विद्यमान थे। बालि ने भी राम को दोषी बतलाते हुए कहा था कि उस पर प्रहार करने का राम का कार्य अपनी राज्य सीमा से बाहर दूसरे की सीमा में अवैधानिक हस्तक्षेप है।

विषये वा पुरे वा ते यदा नापकरोम्यहम्।
न च त्वां प्रतिजानेऽहं कस्मात् त्वं हंस्यकिल्विषम्।।

राज्य के विभिन्न अंगों का रामायण में उल्लेख है। किष्किन्धा काण्ड में प्रायः सभी राज्यतत्त्वों का एकत्र उल्लेख है। प्रायः राजतन्त्र में राजा ही प्रधान होता था। सम्पूर्ण कार्यों की सफलता राजा पर ही निर्भर करती थी किन्तु प्रजा के साथ उसको उचित सामंजस्य रखना पड़ता था क्योंकि राज्य की सर्वोच्च शक्ति उसके निवासियों में निहित थी। रामायण के अनुसार राजा और प्रजा में परस्पर पिता-पुत्र-का-सा सम्बन्ध होना चाहिए। दशरथ ने युवराज के लिए प्रजा की अनुमति मांगी थी। प्रजा के विरोध के कारण ही राजा सगर ने अपने पुत्र असमंजस को राज्य से बहिष्कृत कर दिया था।

रामायण के अनुसार राजा के अभाव में प्रजा में भी असुरक्षा की भावना फैल जाती है, धार्मिक, आर्थिक स्थितियाँ शोचनीय हो जाती हैं। पुत्र पिता की आज्ञा नहीं मानता, पत्नी पति का अनुसरण नहीं करती, शिष्य गुरु के आदेश नहीं सुनता। सम्पत्ति के अधिकारों का आदर नहीं रह जाता। उपार्जन के प्रेरक तत्त्व समाप्त हो जाते हैं, कृषक कृषि के लिए उन्मुख नहीं होते, व्यवसाय भी समाप्त होने लगते हैं। ब्राह्मण वस्तुओं से आक्रान्त होते हुए यज्ञ-यागादि क्रिया कलापों से विमुख होने लगते हैं।

तपस्वियों की तपस्या नष्ट होने लगती है। लोग सार्वजनिक स्थानों का निर्माण नहीं करते तथा नृत्य-गीतादि में रुचि नहीं लेते।

नाराजके जनपदे बीजमुष्टिः प्रकीर्यते।
नाराजके पितुः पुत्रो भार्या व वर्तते वशे।
अराजके धनं नास्ति, नास्ति भार्याप्यराजके।
इदमत्याहितं चान्यत्कुतः सत्यमराजके।
नाराजके जनपदे कारयन्ति सभां नराः।

सारांशतः राजा के अभाव में सर्वत्र जंगल के दृश्य उपस्थित हो जाते हैं। निर्बल और धनहीन, सबल व्यक्तियों के द्वारा आक्रान्त हो जाते हैं।

मत्स्या इव नरा नित्यं भक्षयन्ति परस्परम्।

रामायण काल में समाज में वर्ण व्यवस्था पूर्णरूप से प्रतिष्ठित थी, राजा पद केवल क्षत्रिय के लिए नियत था। आर्य राज्यों में केवल क्षत्रिय ही राजा थे। आर्य भिन्न राज्यों में राक्षसों में रावण, वानरों में बालि, निषादों में गुह राजा थे। राजतन्त्र वंशपरम्परागत क्रम में प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका था। जिसकी जानकारी हमें रामायण में दशरथ और जनक की वंशावली के उल्लेखों से मिलती है। दशरथ ने अपने राज्य को इक्ष्वाकु पूर्व नरेन्द्रों से पालित कहा है—

सोऽहमिक्ष्वाकुभिः पूर्वैर्नरेन्द्रैः परिपालिताम्।
श्रेयसा योक्तुकामोऽस्मि सुखार्हमखिलं जगत्।।

रामायण में राजा के अधिकारों की उतनी चर्चा नहीं जितना उसके कर्त्तव्यों पर बल दिया गया है। राजा गम्भीर उत्तरदायित्वों से सर्वदा घिरा रहता था उसे अनेक विशिष्ट कार्यों का निरन्तर सम्पादन करते रहना पड़ता था। प्रजा की रक्षा और भलाई के लिए उसे हर क्षण तत्पर रहना पड़ता था। विश्वामित्र के यज्ञ रक्षार्थ मारीच और सुबाहु

नामक राक्षसों के वधार्थ दशरथ को राम को भेजना पड़ा। राम ने शत्रुघ्न को यमुना नदी के तीर पर रहने वाले तपस्वियों को लवणासुर के अत्याचारों से रक्षा करने के लिए उसके वध करने को भेजा था। लोगों को कोई कष्ट न हो तथा अपने अधिकारियों द्वारा कोई पीड़ित न किया जाय, इसका राजा को पूर्ण ध्यान रखना पड़ता था। केवल नगरवासियों की तथा ग्रामवासियों की सुरक्षा तक ही राजा का कर्त्तव्य सीमित नहीं था, अपितु अरण्य की कुटियों में निवास करने वाले तपस्वियों की सुरक्षा का दायित्व भी उस पर था, क्योंकि वह उत्पादन का षष्ठ भाग लेने का अधिकार रखता था और इस प्रकार उसे तपस्वियों द्वारा कठिनाई से अर्जित तपस्या का भी षष्ठांश स्वतः प्राप्त हो जाता था। महाकवि कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तल में कहा है—

यदुत्तिष्ठति वर्णेभ्यो नृपाणां क्षयि तद्धनम्।
तपः षड्भागमक्षय्यं ददत्यारण्यका हि नः।।

अपने भावी कर्त्तव्यों के पालन के लिए राजा के प्रारम्भिक प्रशिक्षण पर पूर्ण अवधान दिया जाता था। राम तथा भ्राताओं के प्रशिक्षण के विवरण से राजकुमारों की शिक्षा पद्धति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

धर्म सम्पूर्ण सामाजिक तथा राजनैतिक व्यवस्था का आधार था। अतः धर्म शिक्षा में समस्त लौकिक तथा पारलौकिक रहस्यों का समावेश निपुणता से होता था। लोक कल्याण में रुचि और कर्म करने के उपायों का शिक्षण होता था तथा दृढ़ प्रशासक होने की शिक्षा राजपुत्रों को अनिवार्य रूप से दी जाती थी। वेद तथा वेदांगों की शिक्षा और अभ्यास उस समय की शिक्षा प्रणाली का अनिवार्य अंग था। राजा की शिक्षा में सेना संगठन, संचालन, सैन्यवार्ता तथा शासन दक्षता का प्रमुख रूप से समावेश था। रथों का उस समय की सेना में प्रमुख स्थान था, अतः राजकुमारों के लिए रथ पर आरूढ़ होकर युद्ध का अभ्यास और रथ संचालन का प्रशिक्षण प्राप्त करना महत्त्वपूर्ण था। गजशास्त्र का भी अभ्यास कराया जाता था। संतरण दौड़ तथा लक्ष्यवेध में राजा को दक्षता प्राप्त होती थी। दशरथ तथा राम को शब्दवेधी बाण फेंकने में दक्षता प्राप्त थी।

अपने कार्यों का प्रभावपूर्ण तरीके से पालन करने के लिए राजा को धार्मिक संस्था या धर्माधिकारी के समर्थन की आवश्यकता होती थी। ब्राह्मणों के द्वारा राजसूय, वाजपेयी

आदि यज्ञों का अनुष्ठान राजा के राज्यारोहण के अवसर पर सम्पन्न किया जाता था। रामायण काल में राजसूय यज्ञ का सम्पादन प्रभूत मात्रा में प्रचलित था। राम ने दशरथ को अनेक राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञकर्ता के रूप में स्मरण किया है।

कच्चिद्दशरथो राजा कुशली सत्यसंगरः।
राजसूयाश्वमेधानामाहर्ता धर्मनिश्चयः।

रामायण में राज्याभिषेक का भी विवरण पर्याप्त रूप में मिलता है यथा- किष्किन्धाकाण्ड में सुग्रीव के राज्याभिषेक का वर्णन, लंका में रावण वध के उपरान्त राम द्वारा विभीषण का राज्याभिषेक, वनवास की समाप्ति पर राम का राज्याभिषेक वर्णन।

रामायण में राजा के साथ ही मंत्री का भी बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान स्वीकार किया गया है। वह राजा का सहायक, सृहृद, स्वजन बतलाया गया है।

यत्र नेता च गुणवान् सहायाश्च गुणान्विताः।
तत्र धर्मार्थकामानां भवेत् सम्यक् परीक्षणम्।।
निवार्यमाणं बहुशः सहृद्भिरनिवर्तिनम्।

वह राज्य पूर्ण रूप से नष्ट हो जाता है, जहाँ स्वार्थी राजा अपने मंत्रियों से परामर्श किये बिना ही राज कार्य करता है।

त्वद्विधः कामवृत्तो हि दुःशीलः पापमन्त्रितः।
आत्मानं स्वजनं राष्ट्रं स राजा हन्ति दुर्मतिः।।

राजा दशरथ के सहायक मण्डल में धृष्टि, जयन्त, विजय, सिद्धार्थ, अशोक, धर्मपाल और सुमन्त्र को आमात्य कहा गया है।

धृष्टिर्जयन्तो विजयः सिद्धार्थः श्रमसाधकः।
अशोको मन्त्रपालश्च सुमन्त्रश्चाष्टमोऽभवत्।।

वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, काश्यप, मार्कण्डेय गौतम तथा कात्यायन प्रमुख राजपुरोहित बतलाये गये हैं। ये सभी उत्तरकाण्ड में राम के मन्त्रिमण्डल में भी थे। ये सभी राजा को राजकार्य के समुचित संचालन के लिए परामर्श देते थे तथा राजा द्वारा किसी विशेष मन्त्रणा के लिए बुलाये भी जाते थे, यथा राजा दशरथ ने राम के राज्याभिषेक की मन्त्रणा के लिए मन्त्रिमण्डल के सदस्यों को आहूत किया था।

निश्चित्य सचिवैः सार्धं युवराजममन्यत।

राम ने भी अपने शासनकाल में अनेक बार विशेष विचारार्थ मन्त्रिमण्डल के सदस्यों का आह्वान् किया था यथा- ब्राह्मण बालक की अकाल मृत्यु का दोष, अश्वमेध यज्ञ के विचारार्थ, सीता को अपना पूर्व स्थान प्रदान करने के विचारार्थ।

रामायण में धार्मिक क्रिया कलापों के लिए पुरोहित होता था। अयोध्या में वसिष्ठ पुरोहित पद पर प्रतिष्ठित थे। दशरथ वसिष्ठ से सभी प्रकार की मन्त्रणा करते थे। इसी प्रकार जनक की सभा में शतानन्द का स्थान था। राज्य की सुरक्षा व्यवस्था सेनापति के अधिकार में थी। वह युद्ध में सेना का नेतृत्व व संचालन करता था। लंका में रावण का सेनापति प्रहस्त अपने स्वामी का प्रतिनिधि माना जाता था। इसी प्रकार राम की सेना के सेनानायक सुग्रीव, हनुमान तथा जाम्बवंत थे।

दशरथ के मन्त्रिमण्डल में अर्थसाधक नाम का मंत्री कोषाध्यक्ष के पद पर विभूषित था, इसके साथ धनाध्यक्ष आदि पद भी थे, जिनका प्रधान कार्य विभिन्न स्वीकृत साधनों से कोष संचय करना होता था। इसी प्रकार न्याय विभाग सम्भवतः धर्मपाल के अधिकार में था। प्राचीन भारतीय राजव्यवस्था में राजा या राज्याधिकारियों को नया नियम-कानून बनाने का अधिकार नहीं था। वह धर्म के द्वारा नियंत्रित होता था। राजा जब न्यायासन पर आसीन होता था तब उसके साथ धर्मवाचक व्यवहारज्ञ या धर्म पाठक ब्राह्मण उपस्थित रहते थे।

कार्यपरिषद् में युवराज भी एक महत्त्वपूर्ण पद था। दशरथ के समय राम को युवराज बनाया जाना निश्चित हुआ था। युवराज राज्य के महत्त्वपूर्ण कार्यों में सहयोग देता था। दस्युओं के निग्रह में राम को नियुक्त किया गया था। इसी प्रकार रावण के त्रैलोक्य विजय अभियान के समय विभीषण को सम्पूर्ण लंका का राज्याधिकार दिया गया था।

मन्त्री की नियुक्ति राजा के द्वारा होती थी। राज्य के प्रति स्नेह और भक्ति रखना मन्त्री के चुनाव के लिए प्रारम्भिक योग्यता मानी जाती थी। राज्य के चतुर, सम्पन्न तथा उच्चकुलोत्पन्न अपनी पूर्व पितृपरम्परा से राजा की सेवा में नियत व्यक्ति को मन्त्रि पद प्राप्त होता था। लंका और किष्किन्धा में मंत्रियों की अधिक संख्या ऐसी थी जो राजघराने से ही सम्बन्ध रखते थे। मन्त्री भी राजा के साथ युद्ध में भाग लेता था। विश्वामित्र के मन्त्रियों ने राजा के साथ युद्ध में भाग लिया था। रावण के मन्त्रियों ने भी उसकी युद्ध यात्राओं में उसकी सेनाओं का नेतृत्व किया था। इसी प्रकार रामायण में दूत एवं गुप्तचरों की स्थिति का स्पष्ट उल्लेख मिलता है वाल्मीकि ने दूत को राजा का नेत्र कहा है। रामायण में हनुमान, अंगद, प्रहस्त राजा के दूत के रूप में चित्रित हैं। लंका की घेराबन्दी के समय अपना गुप्तचर विभाग राम ने विभीषण को सौंपा था और विभीषण ने अपने व्यक्तिगत सचिवों के द्वारा रावण की गतिविधियों का पूर्ण परिचय प्राप्त कर उसकी सूचना दी थी। उसने शुक, सारण और शार्दूल नामक रावण के गुप्तचरों को पकड़ा था।

अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि रामायणकालीन राजनीतिक व्यवस्था अपनी समुन्नत एवं सुसंगठित अवस्था में थी। राजधर्म का पालन शासक का प्रथम कर्तव्य था। धर्मशास्त्रों और ऋषियों के मार्गदर्शन से शासन को संचालित किया जाता था। रामायणकालीन राजनीतिक व्यवस्था धर्म, न्याय और नैतिकता पर आधारित थी। इसमें राजा को जनहित और धर्म की रक्षा करने वाला माना गया। यह व्यवस्था शासन की प्राचीन भारतीय परंपराओं का आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करती है।

सन्दर्भ सूची

वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, 7/76/43
वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, 1/5/14
वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, 4/18/6
वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, 4/17/20
वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, 2/32/15-16
वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, 2/61/19-20
वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, 2/61/21
वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, 2/2/3
वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, 2/54/19
अभिज्ञानशाकुन्तल, कालिदास, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी 2/13

वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, 2/1/18-24
वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, 2/4/20, 2/70/15
वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, 2/94/4
वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, 6/16/22
वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, 5/89/15
वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, 6/80/40
वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, 3/35/7
वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, 1/7/3
वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, 2/1/34
वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, 1/67/13
वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, 1/52/7
वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, 7/14/1-2
वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, 23,2/31/9
वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, 4/2/23, 6/31/49, 7/10/22-23
वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, 6/16/13, 6/20/22